विश्व-धर्म के रूप में जैन धर्म-दर्शन की प्रासंगिकता

डॉ० महावीर सरन जैन

आज के विश्व को एक ऐसे धर्म-दर्शन की आवश्यकता है जो उसकी वर्त्तमान समस्याओं का समाधान कर सके।

आज भौतिक विज्ञानों ने बहुत विकास किया है। उनकी उपलब्धियों एवं अनुसंधानों ने मनुष्य को चमत्कृत कर दिया है। ज्ञान का विकास इतनी तीव्र गति से हो रहा है कि प्रबुद्ध पाठक भी उस ज्ञान से परिचय प्राप्त करने में असमर्थ एवं विवश है। ज्ञान की शाखा-प्रशाखा में विशेषज्ञता का दायरा बढ़ता जा रहा है। एक विषय का विद्वान् दूसरे विषय की तथ्यात्मकता एवं अध्ययन पद्धति से अपने को अनभिज्ञ पा रहा है। हर जगह, हर दिशा में नयी खोज, नया अन्वेषण हो रहा है। प्रतिक्षण अनुसंधान हो रहे हैं। जो आज तक नहीं खोजा जा सका, उसकी खोज में व्यक्ति संलग्न है। जो आज तक नहीं सोचा गया उसे सोचने में व्यक्ति व्यस्त है। जिन घटनाओं को न समझ पाने के कारण उन्हें परात्परब्रह्म के धरातल पर अगम्य रहस्य मानकर उन पर चिन्तन करना बन्द कर दिया गया था, वे आज अनुसंधेय हो गई हैं। सृष्टि की बहुत सी गुत्थियों की व्याख्या हमारे दार्शनिकों ने परमात्मा एवं माया की सृष्टि के आधार पर की थी। उन व्याख्याओं के कारण वे 'परलोक' की बातें हो गयी थीं। आज उनके बारे में भी व्यक्ति जानना चाहता है। अन्वेषण की पिपासा बढ़ती जा रही है। आविष्कार का धरातल अब भौतिक पदार्थों तक ही सीमित होकर नहीं रह गया है। अन्तर्मुखी चेतना का अध्ययन एवं पहचान भी उसकी सीमा में आ रही है। पहले के व्यक्ति ने इस संसार में कष्ट अधिक भोगे थे। भौतिक उपकरणों का अभाव था। उसने स्वर्ग की कल्पना की। भौतिक इच्छाओं की सहज तृप्ति की कल्पना ही उस लोक की परिकल्पना का आधार थी। आज की प्रगति उन्हीं दिव्यताओं को धरती के अधिक निकट लाने के प्रयास में रत है। पृथ्वी को ही स्वर्ग बना देने के लिए बेताब है।

इतना होने पर भी मनुष्य सुखी नहीं है। यह असंगति क्यों है? वह सुख की तलाश में भटक रहा है। धन बटोर रहा है, भौतिक उपकरण जोड़ रहा है। वह अपना मकान बनाता है। आलीशान इमारत बनाने के स्वप्न को मूर्त्तिमान करता है। फिर मकान सजाता है। सोफा सैट, कालीन, वातानुकूलित व्यवस्था, महंगे पर्दे, प्रकाश ध्वनि के आधुनिकतम उपकरण एवं उनके द्वारा रचित मोहक प्रभाव। सब कुछ अच्छा लगता है। मगर परिवार के सदस्यों के बीच जो प्यार, विश्वास पनपना चाहिए उसकी कमी होती जा रही है। पहिले पति-पत्नी भावना की डोरी से आजीवन बंधने के लिए प्रतिबद्ध रहते थे। दोनों को विश्वास रहता था कि वे इसी घर में आजीवन साथ-साथ रहेंगे। दोनों का सुख-दुःख एक होता था। उनकी इच्छाओं की धुरी 'स्व' न होकर 'परिवार' थी। वे अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं को पूरा करने के बदले अपने बच्चों एवं परिवार के अन्य सदस्यों की इच्छाओं की पूर्त्ति में सहायक बनना अधिक अच्छा समझते थे। आज की चेतना क्षणिक, संशयपूर्ण एवं तात्कालिकता में केन्द्रित होकर रह गयी है। इस कारण व्यक्ति अपने में ही सिमटता जा रहा है। सम्पूर्ण भौतिक सुखों को अकेला भोगने की दिशा में व्यग्र मनुष्य अन्ततः अतृप्ति का अनुभव कर रहा है।

भौतिक विज्ञानों के चमत्कारों से भयाकुल चेतना को हमें आस्था प्रदान करनी है। निराश एवं संत्रस्त मनुष्य को आशा एवं विश्वास की मशाल थमानी है। जिन परम्परागत मूल्यों को तोड़ दिया गया है उन पर दुबारा विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि वे अविश्वसनीय एवं अप्रासंगिक हो गये हैं। परम्परागत मूल्यों की विकृतियों को नष्ट कर देना ही अच्छा है। हमें नये युग को नये जीवन मूल्य प्रदान करने हैं। इस युग में जो बौद्धिक संकट एवं उलझनें पैदा हुई हैं, हमें समाधान का रास्ता ढूंढ़ना है।

आज विज्ञान ने हमें गति दी है, शक्ति दी है। लक्ष्य हमें धर्म एवं दर्शन से प्राप्त करने हैं। लक्ष्य विहीन होकर दौड़ने से जिन्दगी को मंजिल नहीं मिलती।

वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण जिस शक्ति का हमने संग्रह किया है उसका उपयोग किसप्रकार हो; गति का नियोजन किस प्रकार हो—यह आज के युग की जटिल समस्या है। इसके समाधान के लिए हमें धर्म एवं दर्शन की ओर देखना होगा।

इसका कारण यह है कि धर्म ही ऐसा तत्त्व है जो मानव हृदय की असीम कामनाओं को सीमित करने की क्षमता रखता है, उसकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टि को व्यापक बनाता है, मन में उदारता, सहिष्णुता एवं प्रेम की भावना का विकास करता है।

कोई भी समाज धर्महीन होकर स्थित नहीं रह सकता। समाज की व्यवस्था, शान्ति तथा समाज के सदस्यों में परस्पर प्रेम एवं विश्वास का भाव जगाने के लिए धर्म का पालन आवश्यक है।

धर्म कोई सम्प्रदाय नहीं है। धर्म का अर्थ है—'धञ् धारणे'—धारण करना। जिन्दगी में जो हमें धारण करना चाहिए—वही धर्म है। हमें जिन नैतिक मूल्यों को जिन्दगी में उतारना चाहिए वही धर्म है।

मन की कामनाओं को नियंत्रित किए बिना समाज रचना सम्भव नहीं है। जिन्दगी में संयम की लगाम आवश्यक है।

कामनाओं के नियंत्रण की शक्ति या तो धर्म में है या शासन की कठोर व्यवस्था में। धर्म का अनुशासन 'आत्मानुशासन' होता है। व्यक्ति अपने पर स्वयं नियंत्रण करता है। शासन का नियंत्रण हमारे ऊपर 'पर' का अनुशासन होता है। दूसरों के द्वारा अनुशासित होने में हम विवशता का अनुभव करते हैं, परतंत्रता का बोध करते हैं, घुटन की प्रतीति करते हैं।

मार्क्स ने धर्म की अवहेलना की है। वास्तव में मार्क्स ने मध्ययुगीन धर्म के बाह्य आडम्बरों का विरोध किया है। जिस समय मार्क्स ने धर्म के बारे में चिन्तन किया उस समय उसके चारों ओर धर्म का पाखंड भरा रूप था। मार्क्स ने इसी को धर्म का पर्याय मान लिया।

वास्तव में धर्म तो वह पवित्र अनुष्ठान है जिससे चेतना का शुद्धीकरण होता है। धर्म वह तत्त्व है जिससे व्यक्ति अपने जीवन को चरितार्थ कर पाता है। धर्म दिखावा नहीं, प्रदर्शन नहीं, रूढ़ियां नहीं, किसी के प्रति घृणा नहीं, मनुष्य, मनुष्य के बीच भेदभाव नहीं अपितु मनुष्य में मनुष्यता के गुणों के विकास की शक्ति है; सार्वभौम चेतना का सत्संकल्प है।

आज के विश्व के लिये किस प्रकार का धर्म एवं दर्शन सार्थक हो सकता है?

मध्य युग में विकसित धर्म एवं दर्शन के परम्परागत स्वरूप एवं धारणाओं में आज के व्यक्ति की आस्था समाप्त हो चुकी है। इसके कारण हैं।

मध्ययुगीन चेतना के केन्द्र में 'ईश्वर' प्रतिष्ठित था। हमारा सारा धर्म एवं दर्शन इसी 'ईश्वर' के चारों ओर घूमता था। सम्पूर्ण सृष्टि के कर्त्ता, पालनकर्त्ता, संहारकर्त्ता के रूप में हमने परम शक्ति की कल्पना की थी। उसी शक्ति के अवतार के रूप में, या उसके पुत्र के रूप में या उसके प्रतिनिधि के रूप में हमने ईश्वर, ईसा या अल्लाह को माना उन्हीं की भक्ति में अपनी मुक्ति का मंत्र मान लिया। स्वर्ग की कल्पना, देवताओं की कल्पना, वर्त्तमान जीवन की निरर्थकता का बोध, अपने देश एवं अपने काल की माया एवं प्रपंचों से परिपूर्ण अवधारणा आदि बातें हमारे मध्ययुगीन धर्म एवं दर्शन के घटक थे। वर्त्तमान जीवन की मुसीबतों का कारण हमने अपने विगत जीवन के कर्मों को मान लिया। वर्त्तमान जीवन में अपने श्रेष्ठ आचरण द्वारा अपनी मुसीबतों को कम करने की तरफ ध्यान कम रहा। ईश्वर और मनुष्य के बीच के बिचौलियों ने मनुष्य को सारी मुसीबतों, कष्टों, विपदाओं से मुक्त होकर स्वर्ग, बहिश्त में मौज की जिन्दगी बिताने की राह दिखायी और बताया कि हमारे माध्यम से अपने आराध्यों के प्रति तन, मन, धन से समर्पित हो जाओ—पूर्ण आस्था, पूर्ण विश्वास, पूर्ण निष्ठा के साथ भक्ति करो। तर्क को साधना पथ का सबसे बड़ा शत्रु मान लिया गया।

धर्म की उपर्युक्त धारणायें आज टूट चुकी हैं। विज्ञान ने हमें दुनिया को समझने और जानने का तर्कवादी रास्ता बताया है। विज्ञान ने यह स्पष्ट किया कि यह विश्व किसी की इच्छा का परिणाम नहीं है। विश्व तथा सभी पदार्थ कारण-कार्य भाव से बद्ध हैं। भौतिक विज्ञान ने सिद्ध किया है कि जगत् में किसी पदार्थ का नाश नहीं होता केवल रूपान्तर मात्र होता है। इस धारणा के कारण इस जगत् को पैदा करने वाली शक्ति का प्रश्न नहीं उठता। जीव को उत्पन्न करने वाली शक्ति का प्रश्न नहीं उठता। विज्ञान ने शक्ति के संरक्षण के सिद्धान्त में विश्वास जगाया। पदार्थ की अनश्वरता के सिद्धान्त की पुष्टि की। समकालीन पाश्चात्य अस्तित्ववादी दर्शन ने भी ईश्वर का निषेध किया। उसने यह माना कि मनुष्य का स्रष्टा ईश्वर नहीं है। मनुष्य वह है जो अपने आपको बनाता है।

इस प्रकार जहां मध्ययुगीन चेतना के केन्द्र में 'ईश्वर' प्रतिष्ठित था वहां आज की चेतना के केन्द्र में 'मनुष्य' प्रतिष्ठित है। मनुष्य ही सारे मूल्यों का स्रोत है। वही सारे मूल्यों का उपादान है। आज के मनुष्य के लिए ऐसा धर्म एवं दर्शन व्याख्यायित करना होगा जो 'ईश्वरवादी' नहीं होगा, भाग्यवादी नहीं होगा। उसके विधानात्मक घटक होंगे—(१) मनुष्य, (२) कर्मवाद की प्रेरणा, (३) सामाजिक समता।

आज के अस्तित्ववादी दर्शन में, विज्ञान के द्वारा प्रतिपादित अवधारणाओं में तथा साम्यवादी शासनव्यवस्था में कुछ विचार-प्रत्यय समान हैं।

(१) तीनों ईश्वरवादी नहीं हैं। ईश्वर के स्थान पर मनुष्य स्थापित है।

(२) तीनों भाग्यवादी नहीं हैं। कर्मवादी तथा पुरुषार्थवादी हैं।

(३) तीनों में मनुष्य की जिन्दगी को सुखी बनाने का संकल्प है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्तित्ववादी दर्शन में व्यक्तिगत स्वातंत्र्य पर जोर है तो साम्यवादी दर्शन में सामाजिक समानता पर। इन समान एवं विषम विचार-प्रत्ययों के आधार पर क्या नये युग का धर्म एवं दर्शन निर्मित किया जा सकता है ?

हम देखते हैं कि विज्ञान ने शक्ति दी है। अस्तित्ववादी दर्शन ने स्वातंत्र्य चेतना प्रदान की है, साम्यवाद ने विषमताओं को कम कराने पर बल दिया है फिर भी विश्व में संघर्ष की भावना है, अशान्ति है; शस्त्रों की स्पर्धा एवं होड़ है, जिन्दगी में हैवानियत है। फिर यह सब क्यों ?

इसका मूल कारण है कि इन तीनों ने संघर्ष को मूल मान लिया है। मार्क्सवाद वर्गसंघर्ष पर आधारित है। विज्ञान में जगत्, मनुष्य एवं यंत्र का संघर्ष है। अस्तित्ववाद व्यक्ति एवं व्यक्ति के अस्तित्व वृत्तों के मध्य संघर्ष, भय, घृणा आदि भावों की उद्भावना एवं प्रेरणा मानता है।

आज हमें मनुष्य को चेतना के केन्द्र में प्रतिष्ठित कर उसके पुरुषार्थ और विवेक को जागृत कर, उसके मन में सृष्टि के समस्त जीवों एवं पदार्थों के प्रति अपनत्व का भाव जगाना है; मनुष्य एवं मनुष्य के बीच आत्म-तुल्यता की ज्योति जगानी है जिससे परस्पर समझदारी, प्रेम, विश्वास पैदा हो सके। मनुष्य को मनुष्य के खतरे से बचाने के लिए हमें अधुनिक चेतना सम्पन्न व्यक्ति को आस्था एवं विश्वास का सन्देश प्रदान करना है।

प्रश्न उठता है कि हमारे दर्शन एवं धर्म का स्वरूप क्या हो ?

हमारा दर्शन ऐसा होना चाहिये जो मानव मात्र को सन्तुष्ट कर सके, मनुष्य के विवेक एवं पुरुषार्थ को जागृत कर उसको शान्ति एवं सौहार्द का अमोघ मंत्र दे सकने में सक्षम हो। इसके लिये हमें मानवीय मूल्यों की स्थापना करनी होगी, सामाजिक बंधुत्व का वातावरण निर्मित करना होगा, दूसरों को समझने और पूर्वाग्रहों से रहित मनःस्थिति में अपने को समझाने के लिये तत्पर होना होगा; भाग्यवाद के स्थान पर कर्मवाद की प्रतिष्ठा करनी होगी; उन्मुक्त दृष्टि से जीवनोपयोगी दर्शन का निर्माण करना होगा। धर्म एवं दर्शन का स्वरूप ऐसा होना चाहिये जो प्राणीमात्र को प्रभावित कर सके एवं उसे अपने ही प्रयत्नों के बल पर विकास करने का मार्ग दिखा सके। ऐसा दर्शन नहीं होना चाहिए जो आदमी, आदमी के बीच दीवारें खड़ी करके चले। धर्म और दर्शन को आधुनिक लोकतंत्रात्मक शासन-व्यवस्था के आधारभूत जीवन मूल्यों—स्वतंत्रता, समानता, विश्व बंधुत्व तथा आधुनिक वैज्ञानिक निष्कर्षों का अविरोधी होना चाहिए।

जैन दर्शन : आत्मानुसंधान का दर्शन :

'जैन' साम्प्रदायिक दृष्टि नहीं है। यह सम्प्रदायों से अतीत होने की प्रक्रिया है। सम्प्रदाय में बंधन होता है। यह बंधनों से मुक्ति होने का मार्ग है। 'जैन' शाश्वत जीवन पद्धति तथा जड़ एवं चेतन के रहस्यों को जानकर आत्मानुसंधान की प्रक्रिया है।

जैन दर्शन : प्रत्येक आत्मा की स्वतंत्रता की उद्घोषणा :

भगवान महावीर ने कहा—'पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं।'

पुरुष तू अपना मित्र स्वयम् है। जैन दर्शन में आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है—'अप्पा कत्ता-विकत्ता य दुहाण य सुहाण य' आत्मा ही दुःख एवं दुःख का कर्त्ता या विकर्त्ता है। यानी कोई बाहरी शक्ति आपको नियंत्रित, संचालित नहीं करती, प्रेरित नहीं करती। आप स्वयं ही अपने जीवन के ज्ञान से, चरित्र से उच्चतम विकास कर सकते हैं। यह एक क्रान्तिकारी विचार है। इसको यदि हम आधुनिक जीवन-सन्दर्भों के अनुरूप व्याख्यायित कर सकें तो निश्चित रूप से विश्व के ऐसे समस्त प्राणी जो धर्म और दर्शन से निरन्तर दूर होते जा रहे हैं, इनसे जुड़ सकते हैं।

भगवान् महावीर का दूसरा क्रान्तिकारी एवं वैज्ञानिक विचार यह है कि मनुष्य जन्म से नहीं अपितु आचरण से महान् बनता है। इस सिद्धान्त के आधार पर उन्होंने मनुष्य समाज की समस्त दीवारों को तोड़ फेंका। आज भी मनुष्य और मनुष्य के बीच खड़ी की गयी जितने प्रकार की दीवारें हैं, उन सारी दीवारों को तोड़ देने की आवश्यकता है। यदि हम यह मान लेते हैं कि "मनुष्य जन्म से नहीं आचरण से महान् बनता है।" तो जो जातिगत विष है, समाज की शान्ति में एक प्रकार का जो जहर घुला हुआ है, उसको हम दूर कर सकते हैं। जो पढ़ा हुआ वर्ग है उसे निश्चित रूप से इसको सैद्धान्तिक रूप से ही नहीं अपितु इसे अपने जीवन में आचरण की दृष्टि से भी उतारना चाहिये।

प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा बन सकता है :

प्रत्येक व्यक्ति साधना के आधार पर इतना विकास कर सकता है कि देवता लोग भी उसको नमस्कार करते हैं। 'देवा वित्तं नमंसन्ति जस्स धम्म समायणो।' महावीर ने ईश्वर की परिकल्पना नहीं की; देवताओं के आगे झुकने की बात नहीं की अपितु मानवीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महिमा का जोरदार समर्थन करते हुए कहा कि जिस साधक का मन धर्म में रमण करता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं। व्यक्ति अपनी ही जीवन-साधना के द्वारा इतना उच्चस्तरीय विकास कर सकता है कि आत्मा ही परमात्मा बन सकती है।

जैन तीर्थंकरों का इतिहास एवं उनका जीवन से पृथ्वी पर उतरने का क्रम नहीं अपितु पृथ्वी से ही आकाश की ओर जाने का उपक्रम है। नारायण का नर शरीर धारण करना नहीं है अपितु नर का ही नारायण बनना है। वे अवतारवादी परम्परा के पोषक नहीं अपितु उतारवादी परम्परा के तीर्थंकर थे। उन्होंने अपने जीवन की साधना के द्वारा, प्रत्येक व्यक्ति को यह प्रमाण दिया; उसे यह विश्वास दिलाया कि यदि वह साधना कर सके, राग-द्वेष को छोड़ सके तो कोई ऐसा कारण नहीं है कि वह प्रगति न कर सके। जब प्रत्येक व्यक्ति प्रगति कर सकता है, अपने ज्ञान और साधना के बल पर उच्चतम विकास कर सकता है और तत्त्वतः कोई किसी की प्रगति में न तो बाधक है और न साधक तो फिर संघर्ष का प्रश्न ही कहां होता है? इस तरह उन्होंने एक सामाजिक दर्शन दिया।

प्रत्येक जीव में आत्म शक्ति :

सामाजिक समता एवं एकता की दृष्टि से श्रमण परम्परा का अप्रतिम महत्त्व है। इस परम्परा में मानव को मानव के रूप में देखा गया है; वर्णों, सम्प्रदायों, जाति, उपजाति, वादों का लेबिल चिपकाकर मानव-मानव को बांटने वाले दर्शन के रूप में नहीं। मानव महिमा का जितना जोरदार समर्थन जैन दर्शन में हुआ है वह अप्रतिम है। भगवान् महावीर ने आत्मा की स्वतंत्रता की प्रजातंत्रात्मक उद्घोषणा की। उन्होंने कहा कि समस्त आत्मायें स्वतंत्र हैं। विवक्षित किसी एक द्रव्य तथा उसके गुणों एवं पर्यायों का अन्य द्रव्य या उसके गुणों और पर्यायों के साथ किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है।

इसके साथ-साथ उन्होंने यह बात कही कि स्वरूप की दृष्टि से समस्त आत्मायें समान हैं। अस्तित्व की दृष्टि से समस्त आत्मायें स्वतंत्र है; भिन्न-भिन्न हैं किन्तु स्वरूप की दृष्टि से समस्त आत्मायें समान हैं। मनुष्य मात्र में आत्म-शक्ति है। शारीरिक एवं मानसिक विषमताओं का कारण कर्मों का भेद है। जीवन अपने ही कारण से संसारी बना है और अपने ही कारण से मुक्त होगा। व्यवहार से बंध और मोक्ष के हेतु अन्य पदार्थ को जानना चाहिए किन्तु निश्चय से यह जीव स्वयं मोक्ष का हेतु है। आत्मा अपने स्वयं के उपार्जित कर्मों से ही बंधती है। आत्मा का दुःख स्वकृत है। प्रत्येक व्यक्ति अपने ही प्रयास से उच्चतम विकास भी कर सकता है।

जैन दर्शन में आत्मायें अनन्तानन्त हैं तथा परिणामी स्वरूप हैं किन्तु चेतना स्वरूप होने के कारण एक जीवात्मा अपने रूप में रहते हुए भी ज्ञान के अनन्त पर्यायों का ग्रहण कर सकती है।

स्वरूप की दृष्टि से सभी आत्मायें समान हैं। जीव के सहज गुण अपने मूल रूप में स्थित रहते हैं। पुरुषार्थ के परिणामस्वरूप शुद्धि-अशुद्धि की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है।

आत्मतुल्यता तथा सामाजिक समता :

भगवान् ने समस्त जीवों पर मैत्रीभाव रखने एवं समस्त संसार को समभाव से देखने का निर्देश दिया। 'श्रमण' की व्याख्या करते हुए उसकी सार्थकता समस्त प्राणियों के प्रति समदृष्टि रखने में बतलायी। समभाव की साधना व्यक्ति को श्रमण बनाती है।

भगवान् ने कहा कि जाति की कोई विशेषता नहीं; जाति और कुल से त्राण नहीं होता। प्राणी मात्र आत्मतुल्य है, इस कारण प्राणियों के प्रति आत्मतुल्य भाव रखो; आत्मतुल्य समझो, सबके प्रति मैत्री-भाव रखो, समस्त संसार को समभाव से देखो। समभाव के महत्त्व का प्रतिपादन उन्होंने यह कहकर किया कि आर्य महापुरुषों ने इसे ही धर्म कहा है।

आचार्य समन्तभद्र ने भगवान् महावीर के उपदेश को 'सर्वोदयतीर्थ' कहा है। आत्मतुल्यता की चेतना के विकास होने तथा समभाव की आराधना से व्यक्ति सहज रूप से धार्मिक हो जाता है। अहिंसा, अपरिग्रह एवं अनेकांतवाद जीवन के सहज आचरण की भूमिकायें हो जाती हैं।

अहिंसा : जीवन का विधानात्मक मूल्य एवं भाव दृष्टि :

भगवान् महावीर ने अहिंसा शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया—मन, वचन, कर्म से किसी को पीड़ा न देना। यहां आकर अहिंसा जीवन का विधानात्मक मूल्य बन गया।

महावीर ने अहिंसा के प्रतिपादन द्वारा व्यक्ति के चित्त को बहुत गहरे से प्रभावित किया। उन्होंने संसार में प्राणियों के प्रति आत्मतुल्यता-भाव की जागृति का उपदेश दिया, शत्रु एवं मित्र सभी प्राणियों पर समभाव की दृष्टि रखने का शंखनाद किया।

जब व्यक्ति सभी को समभाव से देखता है तो राग द्वेष का विनाश हो जाता है। उसका चित्त धार्मिक बनता है। रागद्वेष हीनता धार्मिक बनने की प्रथम सीढ़ी है। इस कारण उन्होंने कहा कि भव्यात्माओं को चाहिये कि वह समस्त संसार को समभाव से देखें। किसी को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रिय और किसी को अप्रिय न बनाएं। शत्रु अथवा मित्र सभी प्राणियों पर समभाव की दृष्टि रखना ही अहिंसा है।

समभाव एवं आत्मतुल्यता की दृष्टि का विकास होने पर व्यक्ति अहिंसक अपने आप हो जाता है। इसका कारण यह है कि प्राणी मात्र जीवित रहने की कामना करने वाले हैं। सबको अपना जीवन प्रिय है। सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। जब सभी प्राणियों को दुःख अप्रिय है तो किसी भी प्राणी को दुःख न पहुंचाना ही अहिंसा है। अहिंसा केवल निवृत्तिपरक साधना नही है, यह व्यक्ति को सही रूप में सामाजिक मानने का अमोघ मंत्र है।

अहिंसा के साथ व्यक्ति की मानसिकता का सम्बन्ध है। इस कारण महावीर ने कहा कि अप्रमत्त आत्मा अहिंसक है। एक कृषक अपनी क्रिया करते हुए यदि अनजाने में जीव हिंसा कर भी देता है तो भी हिंसा की भावना उसके साथ जुड़ती नहीं है। भले ही हम किसी का वध न करें, किन्तु किसी के वध करने के विचार के जन्मते ही उसका सम्बन्ध मानसिकता से सम्पृक्त हो जाता है।

इसी कारण कहा गया है कि रागद्वेष का अप्रादुर्भाव अहिंसा एवं उसका प्रादुर्भाव हिंसा है।

हिंसा से पाशविकता का जन्म होता है, अहिंसा से मानवीयता एवं सामाजिकता का। दूसरों का अनिष्ट करने की नहीं, अपने कल्याण के साथ-साथ दूसरों का भी कल्याण करने की प्रवृत्ति ने मनुष्य को सामाजिक एवं मानवीय बनाया है। प्रकृति से वह आदमी है, नैतिकता बोध के संस्कारों ने उसमें मानवीय भावना का विकास कर उसके जीवन को सार्थकता प्रदान की है।

जब मनुष्य पशु जीवन जीता होगा तो रात दिन अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करता होगा। शक्तिमान निर्बल का वध कर देता होगा। विजयी होकर भी उसके जीवन में अनिश्चयात्मकता रहती होगी। जिस दिन दो व्यक्तियों ने आपस में मिलकर परस्पर सद्भाव एवं प्रेम से रहने की बात सीखी उसी दिन परिवार एवं समाज की संरचना की आधारशिला तैयार हुई। इस प्रकार अहिंसा व्यक्ति के चित्त को सामाजिक बनाती है।

अहिंसा से अनुप्राणित अर्थतंत्र : अपरिग्रह :

अहिंसा के साथ ही जुड़ी हुई भावनाएं हैं—अपरिग्रहवाद एवं अनेकांतवाद। परिग्रह से आसक्ति एवं ममता का जन्म होता है। अपरिग्रह वस्तुओं के प्रति महत्त्वहीनता का नाम है। जब व्यक्ति अहिंसक होता है, रागद्वेष रहित होता है तो स्वयमेव अपरिग्रहवादी हो जाता है। उसकी जीवन दृष्टि बदल जाती है। भौतिक-पदार्थों के प्रति आसक्ति समाप्त हो जाती है। अहिंसा की भावना से प्रेरित व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को उसी सीमा तक बढ़ाता है, जिसमें किसी अन्य प्राणी के हितों को आघात न पहुंचे।

बहुत अधिक उत्पादन मात्र करने से ही हमारी सामाजिक समस्याएं नहीं सुलझ सकतीं। हमें व्यक्ति के चित्त को अन्दर से बदलना होगा। उसकी कामनाओं, इच्छाओं को सीमित करना होगा तभी हमारी बहुत सारी सामाजिक समस्याओं को सुलझाया जा सकेगा।

ऐसा नहीं हो सकता कि कोई सामाजिक प्राणी सम्पूर्ण पदार्थों को छोड़ दे। किन्तु हम अपने जीवन को इस प्रकार से ढाल सकते हैं कि पदार्थ हमारे पास रहें किन्तु उनके प्रति हमारी आसक्ति न हो, हमारा ममत्व न हो।

समाज में इच्छाओं को संयमित करने की भावना का विकास आवश्यक है। इसके बिना मनुष्य को शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। 'पर कल्याण' की चेतना व्यक्ति की इच्छाओं को लगाम लगाती है तथा उसमें त्याग करने की प्रवृत्ति एवं अपरिग्रही भावना का विकास करती है।

परिग्रह की वृत्ति मनुष्य को अनुदार बनाती है उसकी मानवीयता को नष्ट करती है। उसकी लालसा बढ़ती जाती है। धन लिप्सा एवं अर्थ-लोलुपता ही उसका जीवन-लक्ष्य हो जाता है। उसकी जिन्दगी पाशविक शोषणता के रास्ते पर बढ़ना आरम्भ कर देती है। इसके दुष्परिणामों को भगवान् महावीर ने पहचाना था। इसी कारण उन्होंने कहा कि जीव परिग्रह के निमित्त हिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी करता है, मैथुन का सेवन करता है और अत्ययिक मूर्च्छा करता है। परिग्रह को घटाने से ही हिंसा, असत्य, अस्तेय एवं कुशील इन चारों पर रोक लगती है।

परिग्रह के परिमाण के लिए 'संयम' की साधना आवश्यक है। 'संयम' पारलौकिक आनन्द के लिए ही नहीं, इस लोक के जीवन को सुखी बनाने के लिए भी आवश्यक है। आधुनिक युग में पाश्चात्य जगत् ने स्वच्छंद यौनाचार एवं निर्बाध इच्छा तृप्ति की प्रवृत्ति के कारण तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता के सिद्धान्त के नाम पर जो संयमहीन आचरण किया उसका परिणाम क्या हुआ ? जीवन की लक्ष्यहीन, सिद्धान्त-हीन, मूल्य विहीन स्थिति एवं निर्बाध भोगों में निरत समाज की स्थिति क्या है ? उनके पास पैसा है, धन दौलत है, साधन हैं किन्तु फिर भी जीवन में संत्रास, अविश्वास, अतृप्ति, वितृष्णा एवं कुंठायें हैं। हिप्पी सम्प्रदाय क्या इसी प्रकार की सामाजिक स्थितियों का परिणाम नहीं हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैचारिक अहिंसा : अनेकान्तवाद

अहिंसक व्यक्ति आग्रही नहीं होता। उसका प्रयत्न होता है कि वह दूसरों की भावनाओं को ठेस न पहुंचावे। वह सत्य की तो खोज करता है, किन्तु उसकी कथन शैली में अनाग्रह एवं प्रेम होता है। अनेकांतवाद व्यक्ति के अहंकार को झकझोरता है। उसकी आत्यन्तिक दृष्टि के सामने प्रश्नवाचक चिह्न लगाता है। अनेकान्तवाद यह स्थापना करता है कि प्रत्येक पदार्थ में विविध गुण एवं धर्म होते हैं। सत्य का सम्पूर्ण साक्षात्कार सामान्य व्यक्ति द्वारा एकदम सम्भव नहीं हो पाता। अपनी सीमित दृष्टि से देखने पर हमें वस्तु के एकांगी गुण-धर्म का ज्ञान होता है। विभिन्न कोणों से देखने पर एक वस्तु हमें भिन्न प्रकार की लग सकती है तथा एक स्थान से देखने पर भी विभिन्न दृष्टियों की प्रतीतियां भिन्न हो सकती हैं।

१६ फरवरी, १९८० को सूर्यग्रहण के अवसर पर काल के एक ही क्षण भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों पर व्यक्तियों को सूर्यग्रहण के समान दृश्य की प्रतीति नहीं हुई। कारवार, रायचूर एवं पुरी आदि स्थानों में जिस क्षण सूर्यग्रहण हुआ जिसके कारण पूर्ण अंधेरा छा गया, वहीं बम्बई में सूर्य का ८५ प्रतिशत भाग, दिल्ली में ५८ प्रतिशत भाग तथा श्रीनगर में ४७ प्रतिशत भाग दिखाई नहीं दिया।

भारतवर्ष में ही सूर्यग्रहण के आरम्भ एवं समाप्ति के समय में भी अन्तर रहा। कारवार में सूर्यग्रहण मध्याह्न २.१७.२० बजे आरम्भ हुआ तो भुवनेश्वर में २.४२.१५ पर तथा कारवार में ४.५२.१० पर समाप्त हुआ तो भुवनेश्वर में ४.५९.३५ पर। पूर्ण सूर्यग्रहण की अवधि रायचूर में २ मिनट ४१ सेकंड रही तो भुवनेश्वर में यह अवधि केवल ४६ सेकंड की ही रही।

'स्याद्वाद' अनेकांतवाद का समर्थक उपादान है; तत्त्वों को व्यक्त कर सकने की प्रणाली है; सत्य कथन की वैज्ञानिक पद्धति है।

मिथ्या ज्ञान के बन्धनों को दूर करके स्याद्वाद ने ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह किया, एकांतिक चिन्तन की सीमा बतलायी। आग्रहों के दायरे में सिमटे हुए मानव की अन्धेरी कोठरी को अनेकांतवाद के अनन्त लक्षण सम्पन्न सत्य-प्रकाश से आलोकित किया जा सकता है। आग्रह एवं असहिष्णुता के बंद दरवाजों को स्याद्वाद के द्वारा खोलकर अहिंसावादी रूप में विविध दृष्टियों एवम् सन्दर्भों से उन्मुक्त विचार करने की प्रेरणा प्रदान की जा सकती है।

यदि हम प्रजातंत्रात्मक युग में वैज्ञानिक पद्धति से सत्य का साक्षात्कार करना चाहते हैं तो अनेकांत से दृष्टि लेकर स्याद्वादी प्रणाली द्वारा कर सकते हैं; विचार के धरातल पर उन्मुक्त चिन्तन तथा अनाग्रह, प्रेम एवं सहिष्णुता की भावना का विकास कर सकते हैं।

इस प्रकार विश्व-धर्म के रूप में जैन धर्म एवं दर्शन की आधुनिक युग में प्रासंगिकता को आज व्याख्यायित करने की महती आवश्यकता है। यह मनुष्य एवं समाज दोनों की समस्याओं का अहिंसात्मक समाधान है। यह दर्शन आज की प्रजातंत्रात्मक शासन-व्यवस्था एवं वैज्ञानिक सापेक्षवादी चिन्तन के भी अनुरूप है। आदमी के भीतर की अशांति, उद्वेग एवं मानसिक तनावों को यदि दूर करना है तथा अन्ततः मानव के अस्तित्व को बनाये रखना है तो जैन दर्शन एवं धर्म की मानव की प्रतिष्ठा, प्रत्येक आत्मा की स्वतंत्रता तथा प्रत्येक जीव में आत्म-शक्ति की स्थापना को विश्व के सामने रखना होगा। जैन धर्म एवं दर्शन मानव-मात्र के लिए समान मानवीय मूल्यों की स्थापना करता है। सापेक्षवादी सामाजिक संरचनात्मक व्यवस्था का चिन्तन प्रस्तुत करता है, पूर्वाग्रह रहित उदार दृष्टि से एक-दूसरे को समझने और स्वयं को तलाशने-जानने के लिए अनेकान्तवादी जीवन-दृष्टि प्रदान करता है, समाज के प्रत्येक सदस्य को समान अधिकार एवं स्व-प्रयत्न से विकास करने का साधन जुटाता है।

अनेकान्तवाद, सत्य और अहिंसा

पहले मैं मानता था कि मेरे विरोधी अज्ञान में हैं। आज मैं विरोधियों को प्यार करता हूँ क्योंकि अब मैं अपने को विरोधियों की दृष्टि से देख सकता हूँ। मेरा अनेकान्तवाद, सत्य और अहिंसा इन युगल सिद्धान्तों का ही परिणाम है।

—महात्मा गांधी, हरिजन, २१ जुलाई, १९४६ से उद्धृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org